आंबेडकर पथ | वर्ष : 1 | अंक : 01 | जनवरी-जून 2024 | ISSN : 3048-7781

डॉ. भीमराव आंबेडकर का धार्मिक चिंतन

–डॉ. बसुंधरा उपाध्याय

डॉ. भीमराव आंबेडकर का जन्म भीमाबाई की कोख से महु में 14 अप्रैल, 1891 को हुआ। भीमराव अपने माता-पिता के चौदहवें बच्चे थे। वह बड़े होकर कभी-कभार यह भी कहते थे, 'मैं अपने माता-पिता का चौदहवाँ रत्न हूँ।'

डॉ. भीमराव आंबेडकर जब बम्बई के एलफिस्टन कॉलेज में प्रविष्ट हो गए, उन्होंने मन लगाकर पढ़ाई आरम्भ की। परन्तु बीमार हो जाने के कारण उनका एक वर्ष मारा गया। दूसरे वर्ष उन्होंने इण्टर आर्ट्स (एम.ए.) उत्तीर्ण कर लिया। एक ओर भीमराव आंबेडकर की ज्ञान प्राप्ति की क्षुधा उतरोत्तर बढ़ती जा रही थी, दूसरी ओर सूबेदार रामजी की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब हो चुकी थी। उनमें आंबेडकर को उच्च शिक्षा दिलवाने की सामर्थ्य नहीं रही थी। भीमराव के जीवन पर आर्थिक कठिनाइयों के काले बादल छा गए थे। ऐसा लगता था कि अब सूर्य को चमकने का अवसर नहीं मिलेगा, परन्तु शीघ्र ही ये बादल छंट गए। बड़ौदा रियासत के महाराज सैय्याजीराम गायकवाड़ ने उनकी ओर अपना दानी हाथ बढ़ा दिया था। उन्होंने भीमराव के लिए 25 रुपए मासिक छात्रवृत्ति नियत कर दी। यह सहायता दिलवाने में बाबासाहेब के एक पुराने अध्यापक श्री केलुस्कर का बहुत हाथ था। श्री केलुस्कर आंबेडकर को महाराजा गायकवाड़ के पास ले गए। महाराज ने भीमराव से कुछ प्रश्न पूछे, जिसका उत्तर उन्होंने ठीक-ठाक दे दिया। वैसे भी महाराजा बड़ौदा ने अपनी रियासत के परिश्रमी और योग्य छात्रों की आर्थिक सहायता की जो घोषणा कर रखी थी, वह आंबेडकर को छात्रवृत्ति देकर क्रियात्मक रूप से पूरी कर दिखाई। श्री केलुस्कर भी एक सच्चे सहायक अध्यापक सिद्ध हुए।

एल.एस.एम. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
Email : basu1577@gmail.com

डॉ. आंबेडकर विद्वान, शिक्षाविद्, राजनेता, प्रभावशाली वक्ता, संविधानवेत्ता, योग्य प्रशासक, क्रांतिकारी परिवर्तनों के पक्षधर एवं दलितों के मसीहा थे। वे अछूतों के अति विश्वसनीय नेता के रूप में आजीवन रहे हैं। भारतीय संविधान सभा में रहकर किए गए कार्यों के कारण उन्हें बड़े आदर के साथ याद किया जाता है। उनका राजनीतिक जीवन लगभग 40 वर्ष का रहा। इस काल में उन्होंने महार जाति एवम् अन्य निम्न जातीय समुदायों को संगठित किया। वे ब्रिटिश एवं स्वतंत्र भारतीय मंत्रिमण्डलों के सदस्य रहे। उन्होंने सामाजिक समस्याओं एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं पर लेखन कार्य एवम् अपना विचार व्यक्त किया।

डॉ. आंबेडकर का मूल्यांकन उनके व्यक्तिगत जीवन तथा निम्न जाति में जन्म के कटु अनुभवों के आधार पर ही संभव है। भारत की जिस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध उन्होंने संघर्ष किया, उस व्यवस्था से वे व्यक्तिगत रूप से पीड़ित थे। उनकी पीड़ा, उनके कार्यकलापों का आधार बन गई थी। जो कटु अनुभव उनको जीवन में हुए, उनके संदर्भ में दो ही प्रतिक्रियाएं संभव थी। प्रथम या तो वे इस पीड़ा को नियति मानकर झेल जाते और आत्मरक्षा का साधन ढूंढ़ लेते या इस पीड़ा के विरुद्ध आवाज़ उठाते। उनके लिए पहली प्रतिक्रिया अत्यधिक सहज होती, क्योंकि वे व्यक्तिगत प्रतिभा के धनी थे। वे अपनी विद्वत्ता के आधार पर अपने को अन्याय की सीमा से निकाल लेने में अवश्य सफल होते।

यह सत्य है कि उनकी दृष्टि अन्य कई समाज सुधारकों से भिन्न थी। उनकी मान्यताएँ भी कुछ अलग थी, उनकी विश्लेषण प्रक्रिया भी औरों जैसी नहीं थी। जहाँ कहीं भी उनकी दृष्टि गयी, वे समस्याओं को समझने में सफल हुए। उन्होंने निर्भयता से अपने समाज को समझने का प्रयत्न किया। वे विदेशों के परिवेश तथा मान्यताओं को पूर्ण रूप से समझते थे, किंतु उन्होंने जिस विचारधारा का प्रसार-प्रचार किया, उसकी संरचना में सबसे अधिक भाग अपने देश के उस यथार्थ का था जिसको उन्होंने व्यक्तिगत रूप से परखा था। जो कुछ सहा और भोगा, वह असाधारण रूप से तीखा और व्यग्र कर देने वाला था। एक संवेदनशील व्यक्ति, जो बौद्धिक क्षमता में किसी से कम नहीं था, उनका ब्राह्मण विरोध अतिरंजित अवश्य दिखाई पड़ता है। वह सही था क्या? जब वे ऊँची जाति के लोगों के द्वारा अछूतों पर किए गए अत्याचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि खोजते हैं तो आर्यों के भारत पर आक्रमण की बात करते हैं। उनका कहना है कि आर्य भारत आये तो उन्होंने अनार्यों को दास बनाया और गंदे कार्य करवाए।

2 मार्च, 1930 को आंबेडकर ने दलित हिन्दुओं की सामाजिक स्वतंत्रता के लिए नासिक में मन्दिर प्रवेश का संघर्ष शुरू किया। यद्यपि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने घोषित

किया था कि हम बम्बई में मन्दिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह करेंगे, फिर भी उन्होंने यह विचार स्थगित किया और महाराष्ट्र के स्पृश्य हिन्दुओं की नाक, नासिक को ही दबाने का संकल्प किया। राष्ट्रीय सभा का संघर्ष जुल्मी और अर्थ शोषण कर जनता को चूसने वाली अन्यायी विदेशी ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ था, तो आंबेडकर का संघर्ष मानवता को कलंक लगाने वाली अमानुष, अन्यायी और अघोर स्वदेशी सत्ता के खिलाफ था। एक तानाशाही, तो दूसरी धर्ममार्तंडशाही-सामाजिकशाही! एक राजनीतिक गुलामी, तो दूसरी सामाजिक गुलामी। नासिक के पंचवटी के कालाराम मन्दिर के व्यवस्थापकों को वहाँ के स्थानीय सत्याग्रह समिति ने विधिवत् लिखित सूचना दी थी कि विशिष्ट समय-सीमा तक दलित गिने हुए हिन्दुओं के लिए राममन्दिर खोला न गया, तो मन्दिर प्रवेश के लिए हम सत्याग्रह करने वाले हैं। उस समय महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात के लगभग 15,000 सत्याग्रही अपने नेता की पुकार को हाँ देकर जमा हुए, यह बहुत बड़ी बात थी।

सत्याग्रह के प्रवर्तक, प्रचारक और कार्यकर्ता लगभग सभी दलित वर्ग के थे। महाड़ के संघर्ष के बाद हुआ यह परिवर्तन साफ दिखाई देता है। दलित हिन्दुओं की इच्छा, तंत्र और मार्ग से चले हर दलितों के आंदोलन को अब घाटा लग गया था। इससे पहले दलित निवारण संबंधी जो सभा-सम्मेलन होते थे, उन सभा-सम्मेलनों में वक्ता, प्रायः सर्व श्रोता, अध्यक्ष और कार्यवाहक दलित हिन्दू होते थे। आजकल इस तरह के सभा-सम्मेलन भी अब दिखने बंद हो गए।

रात ग्यारह बजे कार्यकर्ताओं और नेताओं की एक सभा में मंदिर के सभी दरवाज़ों के सामने सत्याग्रह करना तय हुआ। यह ऐतिहासिक मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह 3 मार्च को सबेरे आरम्भ हुआ। सत्याग्रहियों की पहली टुकड़ी में 125 पुरुष और 25 स्त्रियाँ थी। वे मंदिर के चारों दरवाज़ों पर पालथी मारकर बैठ गए सत्याग्रह में भाग लेने के लिए लोग बड़ी उत्सुकता से इंतजार कर रहे थे। जिलाधिकारी गार्डन साहब और प्रथम श्रेणी के दो दंडाधिकारी वातावरण में शान्ति प्रस्थापित करने की दृष्टि से व्यक्तिशः देखरेख कर रहे थे। सरकार ने आदेश निकाला था कि मंदिर की दीवार से 300 यार्ड अन्तर के भीतर पत्थर, लाठी, लकड़ी, हथियार आदि लाना मना है। पुलिस अधीक्षक रेनॉल्ड्स ने मंदिर के पास ही अपने कार्यालय का डेरा डाल दिया था। उसमें सत्याग्रहियों की ओर सहानुभूतिपूर्वक देखने वाले ल.सु. शेलके जैसे पुलिस अधिकारी थे। यह सत्याग्रह 1 अप्रैल तक जारी रहा। अंत में यह तय हुआ कि दोनों ओर के लोग रथ को खींचेंगे। वह दृश्य देखने लायक था। ''किसी भी व्यक्ति के जीवन दर्शन में धर्म के प्रति उसका चिंतन क्या है, इसका विशेष महत्त्व है और वस्तुतः एकेश्वरवाद से लेकर अनेकेश्वरवाद तक नास्तिक से लेकर अनेक आडम्बरों और कर्मकाण्डों, धार्मिकता, नैतिकता आदि को सम्मिलित करते

हुए धर्म के अनेक अर्थ लगाए जाते हैं।

वैदिक साहित्य में धर्म शब्द कहीं "धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में प्रयुक्त हुआ है तो कहीं निश्चित अवस्था के आचरण नियम के अर्थ में। धर्म को धारण करने में समयानुसार परिवर्तन होता रहा है।"[1] काणे के अनुसार धर्म शास्त्र में धर्म शब्द मानव के विशेषाधिकारों, कर्त्तव्यों, बंधनों का द्योतक, आर्य जाति के सदस्य की आचार विधि का परिचायक एवं वर्णाश्रम का द्योतक हो गया। मनुस्मृति के टीकाकार मेघातिथि के अनुसार स्मृतिकारों ने धर्म के पाँच स्वरूप बताए हैं—1. वर्ण धर्म, 2. आश्रम धर्म, 3. वर्णाश्रम धर्म, 4. नैमितिक धर्म तथा 5. गुण धर्म। "महाभारत काल की दृष्टि में धर्म भौतिक एवं नैतिक व्यवस्था है जो सारे जगत् को तथा उसके सारे कार्य व्यापार को धारण करती है (धारणाद धर्म मित्याहुः) जिस तत्त्व में धारण करने की शक्ति है, वह ही धर्म है।"[2]

डॉ. आंबेडकर का धार्मिक चिंतन उनके पूर्ववर्ती समाज सुधारकों से भिन्न है। उनकी मान्यतायें कुछ विशेष परिस्थितियों की उपज हैं। उन पर समसामयिक स्थितियों का प्रभाव था जिसके कारण उनकी दर्शन की विविध अभिव्यक्तियाँ भारतीय क्षितिज पर सामने आयीं। बीसवीं सदी के भारत में दो दार्शनिक विचारधाराएँ विकसित हुई। एक समूह उन विचारकों एवं सुधारकों का था जो वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध कुछ-न-कुछ कहते हुए इस प्रकार के सुधारों के पक्ष में थे—जैसे बाल विवाह एवं विधवा विवाह। दूसरा समूह उन समाज सुधारकों के पक्ष में था जो मूलतः वर्णाश्रम धर्म के ही विरुद्ध थे और उसे मूल रूप से समाप्त कर मौलिक सुधारों के पक्ष में थे।

शूद्रों की उत्पत्ति की खोज के सिलसिले में हिन्दू साहित्य का विश्लेषण करते समय ब्राह्मण दृष्टिकोण प्रशंसात्मकता एवं निन्दात्मकता में भिन्नता की जानकारी थी ऐतिहासिक खोज के लिए। ये दोनों ही दृष्टिकोण हानिकारक हैं। इसलिए अपनी खोज में मैंने अपने को निष्पक्ष रखा है। यह सही है कि इस देश में एक अब्राह्मण आंदोलन चल रहा है। यह शूद्रों का राजनीतिक आंदोलन है। यह सही है कि मैं इस आंदोलन के साथ जुड़ा हुआ हूँ किंतु मैंने अपने शोध को अब्राह्मण राजनीति का हिस्सा नहीं बनाया है।"[3]

डॉ. आंबेडकर की दृष्टि से जो व्यवहारिकता से परे हो, जो निर्गुण निराकार हो, उसे प्रत्यक्ष कैसे माना जाए।[4] डॉ. आंबेडकर के अनुसार, शंकर के अद्वैतवाद (ब्रह्मवाद) का यही व्यावहारिक अंतर्विरोध है, जो ब्रह्म और आत्मा की एकता एवं यथार्थता का खण्डन करता है।[5] ब्रह्म को सगुण ईश्वर भी कहा गया है जो जगत् का सृष्टा, पोषक एवं संहारक है। डॉ. आंबेडकर ईश्वर के सगुण रूप को अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार, "ईश्वर अज्ञात एवं अदृश्य है। कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि ईश्वर ने जगत् की सृष्टि की

है। जगत् का विकास हुआ है, न कि सृष्टि।" उनके अनुसार, ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने में मानव को कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि मनुष्य का अपना सदाचरण ही साथ देता है। ईश्वर का प्रत्यय अंधविश्वास का जनक है। वह सत्य और बुद्धि पर आधारित नहीं है। ईश्वर को सृष्टा, पोषक और संहारक मानना प्रत्यक्ष एवं अनुमान दोनों से ही प्रमाणित नहीं हो सकता। इस प्रकार, डॉ. आंबेडकर ने ब्रह्म के निर्गुण और सगुण किसी भी रूप को स्वीकार नहीं किया। इससे मनुष्य की किसी व्यावहारिक समस्या का समाधान नहीं निकलता।[6] आंबेडकर के अनुसार, मिथ्या धर्म सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और वैज्ञानिक प्रगति में संकट तथा विवादों को जन्म दिया है। यही कारण है कि मिथ्या धर्म, मताग्रह, धर्मान्धता, हठधर्मिता, रूढ़िवाद, साम्प्रदायिकता, मजहबी उन्माद आदि रूपों में अभिव्यक्त होकर सामाजिक शान्ति एवं न्याय-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करता है। डॉ. आंबेडकर को बौद्ध धर्म में ऐसा नहीं मिलता। इसीलिए उन्होंने बौद्ध धर्म को अपने विचारों के अनुरूप पाकर स्वीकार किया।[7]

डॉ. आंबेडकर के अनुसार, नीति गति है, कर्म है, कर्म जीवन है, जीवन विश्वास है, यही मानवीय अस्तित्व की सही अनुभूति है। उनका दर्शन मानव से आरम्भ होकर मानव तक समाप्त होता है। मानवीय सीमाओं, मानवीय गुणों, मानवीय सहयोग तथा सहिष्णुता से परे धर्म का कोई अर्थ एवं महत्त्व नहीं है। धर्म मानव-मानव के मध्य मधुर संबंध स्थापित करने, उनके स्थायित्व, उन्नति और विकास लाने का साधन है। धर्म मानव के लिए है। ईश्वर के लिए नहीं। धर्म समता, न्याय, प्रेम के लिए है, व्यक्ति में द्वेष, विरोध, ऊँच-नीच की भावना उत्पन्न करने के लिए नहीं। मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में नीति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि नैतिकता के आधार पर शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित, अधिकार-कर्त्तव्य आदि की सुव्यवस्थित व्याख्या की जा सकती है। उनका प्रत्येक दर्शन न केवल दलित समुदाय अपितु सम्पूर्ण मानव जीवन के लिए एक स्पष्ट, निश्चित और संतुलित व्यवस्था है जो प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राज्य को अपने-अपने दायित्व का समुचित बोध कराता है।[8]

आंबेडकर का कहना था कि कुछ लोग यह सोचते हैं कि धर्म समाज के लिए आवश्यक नहीं है, दुनिया को धर्म की जरूरत नहीं है, किंतु उनका सोचना गलत है। विज्ञान के प्रभाव में आकर अनेक लोग धर्म को त्रुटि मानते हैं। इसलिए वे धर्म का परित्याग आवश्यक समझते हैं। दूसरे बहुत से लोग हैं जो मार्क्सवादी शिक्षा से प्रभावित होकर धर्म को अफीम समझते हैं—ऐसी अफीम जो गरीब लोगों को अमीरों की अधीनता और गरीबी में जीवन गुजारने की अभ्यस्त बनाती है। इसलिए ये लोग भी धर्म को त्याज्य मानते हैं, किंतु लोगों की यह सोच ठीक नहीं है। धर्म को महत्त्व देने से आंबेडकर का

अभिप्राय जीवन में आर्थिक पक्ष की अनेदखी करना नहीं था। खासतौर पर दलितों और पिछड़े वर्गों के लोगों को जो सदियों से अपने लिए दो जून की रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाते थे। धर्म का उपदेश देकर डॉ. आंबेडकर आर्थिक व सामाजिक अधिकारों के लिए उनके द्वारा किए जा रहे संघर्ष से उनका ध्यान हटाना नहीं चाहते थे। इसके विपरीत आंबेडकर ने स्वयं कहा कि जो भूखा है, उसे धर्म के ऊँचे उपदेशों से क्या लेना देना? तथापि उनकी दृष्टि में दलितों के लिए केवल पेट भरना, जीवित रहना अथवा धन सम्पन्न होना ही काफी नहीं था। वे शरीर के साथ मन और मस्तिष्क का भी विकास आवश्यक मानते थे। मन और मस्तिष्क का विकास शुद्ध विचारों से होता है जिसका स्रोत धर्म है। धर्म व्यक्ति की रक्षा करता है। धर्म व्यक्ति का शोषण नहीं करता। जो धर्म व्यक्ति का शोषण करता है, वह धर्म नहीं है, अधर्म है। आंबेडकर के अनुसार धर्म व्यक्ति के लिए होता है[9] न कि व्यक्ति धर्म के लिए।

धर्म को व्यक्ति के अस्तित्व एवं महत्त्व को स्वीकार करना चाहिए तथा उसके आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करना चाहिए। धर्म के अध्ययन में आंबेडकर ने तीन बातों पर जोर दिया है। पहली धर्म की अवधारणा यह मूल्यात्मक व तुलनेय नहीं है। शेष दोनों बातें धर्म की अंतर्वस्तु एवं क्रियात्मक पक्ष से संबंधित होने के कारण धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। धर्म की व्याख्या करते समय आंबेडकर ने स्वीकार किया कि मैं बाल गंगाधर तिलक की इस बात से सहमत हूँ कि धर्म वह है जो लोगों को एकता में बांध कर रखता है। इस संदर्भ में समान आस्था की तुलना में सामान्य धार्मिक नियमों, जो व्यक्तियों के व्यवहारों का नियमन करते हैं, को आंबेडकर ने अधिक महत्त्व दिया। उनकी मान्यता है कि इन नियमों की प्रकृति पर ही सामाजिक एकता की प्रकृति निर्भर करती है। उदाहरणस्वरूप यदि कोई धर्म व्यक्ति को नहीं समूह को इकाई मानता है और उसके नियम विभिन्न समूहों के कार्य एवं उनमें आदान-प्रदान को ही परिभाषित करते हैं, तो उस धार्मिक समूह में एकता का स्वरूप उससे भिन्न होगा जो व्यक्ति महत्त्व देता है और जिसके नियम व्यक्ति के कार्यों तथा व्यक्ति और व्यक्ति के बीच संबंधों का निर्धारण करते हैं। धर्म के सामाजिक, नैतिक आचार, सिद्धांत एवं नियम धर्मावलम्बियों के सामाजिक, धार्मिक एवं संस्कारात्मक व्यवहारों को नियमित करते हैं। सामान्यतया धर्मों में यह दावा अथवा विश्वास किया जाता है कि धर्म ग्रंथ ईश्वर प्रणीत अथवा ईश्वरीय शक्ति से विभूषित मानव द्वारा प्रणीत हैं। इसलिए उनमें जिन सिद्धांतों, नियमों एवं आदर्शों को प्रतिपादित किया गया है वे ईश्वरीय हैं और उन सिद्धांतों एवं नियमों के आधार पर जिस आदर्श व्यवस्था की रचना की गई है, वह व्यवस्था भी ईश्वरीय या दैवीय है। ईसाई धर्म में

बाइबिल, इस्लाम में कुरान एवं हदीस तथा हिन्दू धर्म में वेद, गीता व स्मृतियाँ धार्मिक या ईश्वरीय संहिता हैं जिनमें उन नियमों का प्रतिपादन किया गया है, जो उन धर्मावलम्बियों के धार्मिक, संस्कारात्मक एवं सामाजिक जीवन को नियंत्रित करते हैं।

धर्म दर्शन का तीसरा आयाम किसी धर्म की दैवीय शासन की आदर्श योजना, जिसकी वह वकालत करता है और जिसकी स्थापना के लिए वह अस्तित्व में होता है, का मूल्य आंकने के लिए मापदण्ड का निर्धारण करना है। इस संदर्भ में डॉ. आंबेडकर ने धर्म में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण निरूपित किया है। यह सही है कि सभी प्राचीन समाज आम जनता को शिक्षित करने का दायित्व नहीं उठाने के दोषी रहे हैं किंतु कोई भी समाज इस बात का दोषी नहीं रहा है कि उसने जनसामान्य को धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने से वंचित किया हो, कभी किसी समाज ने जनसामान्य को ज्ञान प्राप्त करने से मना किया हो, कभी किसी समाज ने साधारण व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त करने के लिए घोषित किया हो। मनु ही केवल ऐसे ईश्वरीय विधान के निर्माता हैं जिन्होंने सामान्य व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार से वंचित किया।[10]

अंततः वह कहते हैं कि समाज में नैतिकता व संगठन को बनाए रखने की दृष्टि से यद्यपि नैतिक एवं संवैधानिक संहिताओं का होना आवश्यक है जिसके अभाव में समाज निश्चित रूप से टुकड़ों में विभक्त हो जाएगा तथापि समाज में कानून की भूमिका इस अर्थ में सीमित होती है कि यह थोड़े ही लोगों को अनुशासन में रख पाता है। बहुमत को अनुशासित रखने के लिए समाज को धार्मिक एवं नैतिक अनुमोदनों का सहारा लेना ही पड़ता है। आंबेडकर के अनुसार जिसे आमतौर पर धर्म कहा जाता है, वह मजहब है। मजहब जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, धर्म से भिन्न होता है। मजहब वैयक्तिक होता है। मजहब ईश्वर, आत्मा, प्रार्थना, पूजा, यज्ञ, बलि, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड तथा रहस्य पर आधारित है। मजहब का संबंध इस लोक से कम परलोक से अधिक होता है। धर्म सामाजिक होता है। धर्म नैतिक होता है। धर्म मानव कल्याण में वृद्धि करता है। धर्म मानव व्यक्तित्व का विकास करता है। धर्म न्याय की स्थापना करता है। धर्म समाज में एकता व भाईचारा पैदा करता है।

सभी धर्मों की अपनी विशेषताएं हैं किंतु वही धर्म वास्तविक धर्म है जो तर्क एवं विवेकसंगत हो, सामाजिक नैतिकता पर आधारित हो, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक हो और जो सभी काल में सभी मानव जाति की सेवा कर सकता हो।

आंबेडकर जी का मानना था कि डॉ. आंबेडकर को किसी विशेष अर्थ में धार्मिक व्यक्ति नहीं कहा जा सकता, किंतु धर्म को वे मनुष्य के लिए आवश्यक मानते थे। धर्म इसलिए आवश्यक नहीं है कि उससे मुक्ति मिलती है अथवा आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया

संभव होती है अपितु इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके पास बौद्धिक क्षमताएँ हैं। उनके अनुसार, धर्म के दो स्रोत हैं—मनुष्य की सामाजिकता एवं उनकी बौद्धिकता। यदि मनुष्य को समाज की आवश्यकता न होती और उसके पास प्रज्ञा न होती तो धर्म की कोई गहरी आध्यात्मिक आस्था नहीं है, न ही किसी अदृश्य या अज्ञात का समस्यात्मक संकेत। यह मानवोचित आस्था है जो हमारी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसलिए वह हमारी पहचान भी है।

संदर्भ ग्रंथ

1. महाभारत, कर्ण पर्व, 6958, मनुस्मृति 1063,1,109, अर्थशास्त्र 1:81
2. महाभारत की सांस्कृतिक विचारधारा, स. शिवकुमार गुप्ता, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 35
3. नवयुग विशेषांक, भाग तथा अंक-7, बम्बई, 1949, पृष्ठ 74, डॉ. डी.आर. जाटव, 134
4. डॉ. सुनीता पचौरी, पूर्व में उद्धृत, पृष्ठ 294
5. डॉ. सुनीता पचौरी, पूर्व में उद्धत, पृष्ठ 298
6. रमेश चन्द्र शर्मा : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 96
7. डॉ. रवि प्रकाश मेहरदा : जाति प्रथा कुछ सुझाव, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
8. भगवान दास, दस स्पोक, पृष्ठ 89, अंक 1980
9. आंबेडकर जालंधर, बुद्धिष्ट पब्लिसिंग हाउस, 1987, 43 वही
10. आंबेडकर, डॉ. आंबेडकर सैट्स ऑफ मॉयनारिटीज, 1980, पृष्ठ